प्राचीन साहित्य

लक्ष्मीवल्लभोपाध्यायजी रचित

जिनप्रतिमा के विषय में सम्यग्दृष्टी को शिक्षा सज्झाय

संपादक : मणिगुरु चरणरज
मुनि मेहुलप्रभसागर

कृति परिचय

उपाध्याय प्रवर श्री लक्ष्मीवल्लभजी महाराज द्वारा मरुगुर्जर भाषा में निबद्ध सत्ताइस गाथा की मननीय रचना है। लगभग सवा तीनसौ वर्ष प्राचीन व अद्यपर्यन्त प्रायः अप्रकाशित इस लघु कृति में सम्यग्दृष्टी श्रावक को उपदेश देते हुए जिनप्रतिमा की महिमा, दर्शन से भाव शुद्धि आदि आगम की साक्षी देते हुए बताया गया है। ढुंढक मत के लोगों को सद्बोध देने हेतु प्रस्तुत कृति की रचना हुई हो ऐसा प्रतीत होता है। कृति का संक्षिप्त सार इस प्रकार है–

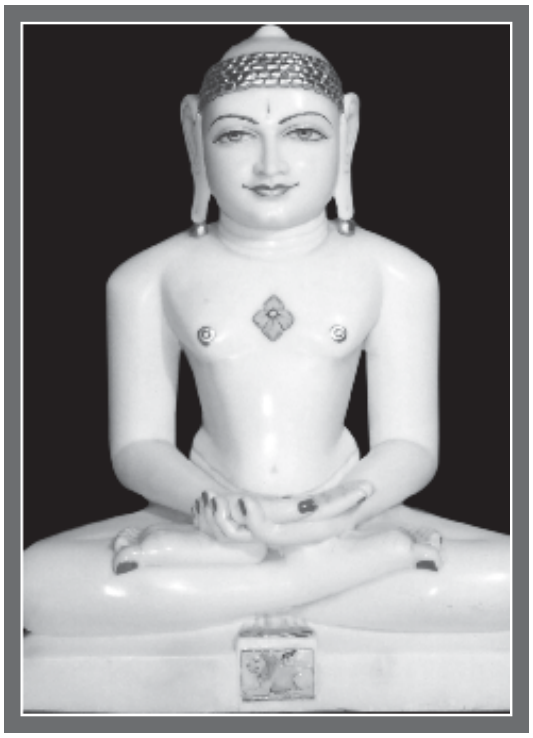

आदिम गाथाओं में श्रीजिनराज ने भवसमुद्र से तिरने के लिये जिनप्रतिमा को जहाज के समान बताकर उपदेश दिया है कि हे सुविचारी प्राणी! मन से शंकारहित होकर सुनो और समकितधारी बनो।

तीसरी गाथा में जिनके नाम स्मरण और जाप पूर्वक हम सभी जीवन जी रहे हैं एवं जिनकी आज्ञा धारण करते हैं उनकी प्रतिमा को अप्रमाणित करने पर समस्त क्रियाएं भी स्वतः अप्रमाणित हो जाती है।

पांचवी गाथा में संपूर्ण हिंसा का त्याग होने से साधु को भावपूजा करना कहा है जबकि श्रावक को द्रव्य भाव रूप दोनों पूजा करने का विधान किया गया है।

सातवीं गाथा में धर्म के चार प्रकार में से दान–शील–तप की आराधना नितप्रति नहीं हो सकती जबकि भाव से जिनबिंब को वंदना करने पर भव भव के पाप दूर हो जाते हैं।

आठवीं गाथा में जिनराज का नाम स्मरण करने से जीह्वा निर्मल होती है और जिन प्रतिमा के दर्शन करने से काया निर्मल होती है।

नवमी गाथा में साधु सर्वविरति धारक होने से बीस विश्वा दया पालता है जबकि श्रावक देशविरति धारक होने से सवा विश्वा ही दया पालन कर सकता है इस तरह साधु धर्म और श्रावक धर्म में मेरु पर्वत और सरसों जितना फर्क बताया गया है।

बारहवीं गाथा में श्रावक को चाहिए कि सम्यक्त्व प्राप्ति हेतु जिनबिंब की पूजा और मुनि सेवा करें।

तेरहवीं गाथा में पौषधोपवास व्रत की आराधना पर्व दिनों में करना कहा है, आवश्यक–प्रतिक्रमण दोनों समय करना कहा है, अवसर मिलने पर सामायिक करना कहा है और प्रतिदिन भोजन करने से पूर्व जिनराज और मुनिराज के दर्शन करना कहा है।

चौदहवीं गाथा में घर–कृषि–व्यापार में आरंभ कहा गया है परंतु जिन पूजा करने में जिनभक्ति कही गई है।

पंद्रहवीं गाथा में दान और पूजा से श्रावक सुखी होता है।

सोलहवीं गाथा में जो अपनी मति–कल्पना से जिन मूर्ति को अमान्य करते हैं उन्हें मिथ्यात्व का समूह कहना योग्य है।

सत्रहवीं गाथा में जिनराज और मुनिराज की सेवा में आरंभ को भगवती सूत्र के अनुसार अल्पकर्म और बहू निर्जरा वाला बताया है। इस तरह के सूत्र वचनों का जो लोप अथवा संदेह करते है उन्हें भारीकर्मा जानना चाहिए।

उन्नीसवीं गाथा में जिन पूजा में अंतराय देने से 10 प्रकार के अंतराय का बंध होना बताया है।

बीसवीं गाथा में 'न्हाया कयवली कम्मिया' इत्यादि अंग–उपांग के पाठों के अर्थ का विचार कर परमात्मा की पूजा के 17 प्रकार का स्वरूप जानने का बताया गया हैं।

बाइसवीं गाथा में परमात्मा पूजा हित–सुख और मोक्ष का कारण है।

तेइसवीं गाथा में उदाहरण देकर समझाया है जिस प्रकार नारी के चित्र में रहे रूप को देखने पर काम राग उत्पन्न होता है उसी तरह वैराग्य की कल्पना करने पर मन में विराग–भाव उत्पन्न होता है।

चोबीसवीं गाथा में श्री शय्यंभवसूरि, आर्द्रकुमार आदि जिन प्रतिमा के दर्शन से प्रबुद्ध हुए और भवसागर को पार किया।

पच्चीसवीं गाथा में जो सम्यक्त्व को धारण करता है वह उत्तम करणी से अपने जीवन को पवित्र बनाता है वह कुत्सित–दुष्ट कर्म नहीं करता है।

छब्बीसवीं गाथा में मुनि और श्रावक दोनों पंचम आवश्यक में सर्वलोक में स्थित जैन चैत्य और प्रतिमा की आराधना करते हैं।

सत्ताइसवीं गाथा में जिन धर्म का सार संक्षेप बताते हुए लक्ष्मीवल्लभ गणि फरमाते हैं कि जिन वचन में शंका का त्याग करते हुए समकितधारी बनें।

कृति में रचना संवत् का उल्लेख नहीं है। फिर भी रचनाकार का साहित्योपासना काल उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर वि.सं. 1721 से वि.सं. 1747 तक का मानी जा सकती है। उसी काल में इस कृति की भी रचना हुई है।

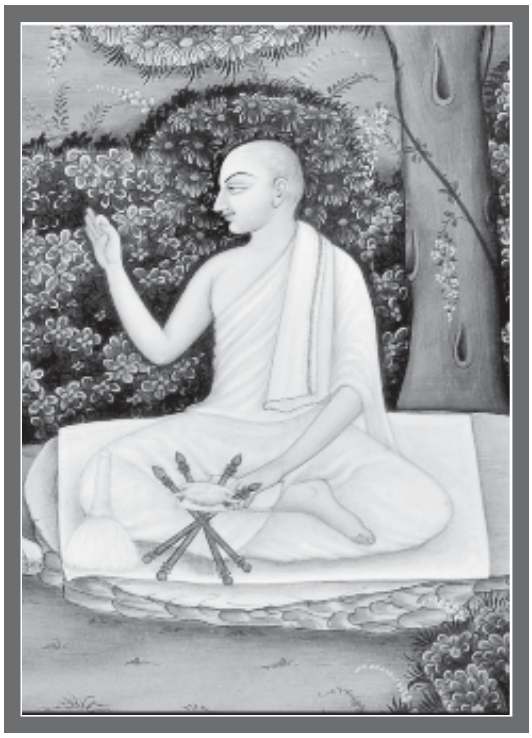

कर्ता परिचय

यशःपूंज तृतीय दादागुरुदेव आचार्य श्री जिनकुशलसूरि के शिष्य गौतमरास के रचयिता विनयप्रभ उपाध्याय से एक पृथक् साधु परम्परा चली जो एक स्वतंत्र शाखा न होकर मुख्य परम्परा की आज्ञानुवर्ती रही। विनयप्रभ उपाध्याय के शिष्य विजयतिलक उपाध्याय हुए। उपाध्याय क्षेमकीर्ति इन्हीं के शिष्य थे।

प्रचलित मान्यतानुसार उपाध्याय क्षेमकीर्ति ने एक साथ 500 धावड़ी (बाराती) लोगों को दीक्षा दी थी इसीलिये यह परम्परा क्षेमकीर्ति या क्षेमधाड़ शाखा के नाम से जानी जाती है।

यही बात कल्पसूत्र की कल्पद्रुमकलिका टीका की प्रशस्ति में लिखी गई है–

श्रीमज्जिनादिकुशलः कुशलस्य कर्ता
गच्छे बृहत्खरतरे गुरुराड् बभूव।
शिष्यश्च तस्य सकलागमतत्त्वदर्शी
श्रीपाठकः कविवरो विनयप्रभोऽभूत् ।।1।।
विजयतिलकनामा पाठकस्तस्य शिष्यो
भुवनविदितकीर्तिर्वाचकः क्षेमकीर्तिः।
प्रचूरविहितशिष्यः प्रसृता तस्य शाखा
सकलजगति जाता क्षेमधारी ततोऽसौ ।।2।।

अपने उदय से लेकर बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक तक यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से पहले साधुओं के रूप में और बाद में वही यतियों के रूप में चलती रही। इस शाखा में गीतार्थ विद्वानों की लम्बी और विशाल परम्परा रही है। इसमें अनेक दिग्गज विद्वान् एवं साहित्यकार हुए हैं जिनमें से कुछ के नामोल्लेख इस प्रकार हैं– उपाध्याय तपोरत्न, महोपाध्याय जयसोम, महोपाध्याय गुणविनय, मतिकीर्ति, उपाध्याय श्रीसार,

वाचक सहजकीर्ति, विनयमेरु, महाकवि जिनहर्ष, लाभवर्धन, उपाध्याय रामविजय, उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ, भुवनकीर्ति, अमरसिंधुर इत्यादि। जिनकी रचित सहस्रों कृतियों से न केवल जैन साहित्य अपितु समग्र भारतीय वाङ्मय समृद्ध हैं।

प्रस्तुत कृति के रचनाकार उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभजी महाराज है। ये खरतरगच्छीय क्षेमकीर्ति शाखा के उपाध्याय लक्ष्मीकीर्ति के शिष्य थे। इनका मूल नाम 'हेमराज' और उपनाम 'राजकवि' था। आपकी जन्म–दीक्षा आदि तिथि और स्थलों की जानकारी गवेषणीय है। संस्कृत, राजस्थानी और हिन्दी तीनों भाषाओं में इन्होंने अनेक रचनायें की हैं। कल्पसूत्र की कल्पद्रुमकलिका टीका आपकी प्रसिद्ध कृति है। साथ ही संस्कृत भाषा में कुमारसंभव महाकाव्य टीका, उत्तराध्ययन टीका, धर्मोपदेश काव्य स्वोपज्ञ टीका, पंचकुमार कथा, जिनकुशलसूरि अष्टक सहित स्फुटक कृतियां भी प्राप्त होती है।

प्राकृत में चौवीस दंडक विचार कुलक उपलब्ध होता है। मरुगुर्जर रचनाओं में अभयंकर श्रीमती चौपई, अमरकुमार रास, भावना विलास, भर्तृहरि कृत शतकत्रय स्तबक, नेमि राजुल बारहमासा, विक्रमादित्य पंचदंड चौपाई, कृष्ण रुक्मिणी वेली बालावबोध, संघपट्टक बालावबोध, नवतत्त्व भाषा बन्ध, वर्तमान जिन चौवीसी, बत्तीसी साहित्य, बावनी साहित्य सहित विविध स्तवनों की रचना कर श्रुतज्ञान की सेवा की है। वैद्यक सम्बन्धी भी दो रचनायें मिलती हैं–मूत्र परीक्षा और कालज्ञान।

जिनप्रतिमा विषये सम्यग्दृष्टीनां शिक्षा सज्झाय नामक कृति खरतरगच्छ साहित्य कोश में क्रमांक 6060 पर अंकित है। परंतु कर्ता के रूप में लब्धिकल्लोल उपाध्याय गुरुनाम– विमलरंग उपाध्याय लिखा गया है जो त्रुटिपूर्ण है।

प्रति परिचय

जिनप्रतिमा विषये सम्यग्दृष्टीनां शिक्षा सज्झाय नामक हस्तलिखित कृति की प्रतिलिपि राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर संग्रहालय से महेन्द्रसिंहजी भंसाली (अध्यक्ष जैन ट्रस्ट, जैसलमेर) के शुभप्रयत्न से प्राप्त हुई है। एतदर्थ वे साधुवादार्ह हैं। जोधपुर में इस पुस्तकनुमा हस्तलिखित प्रति क्रमांक 29813 में अनेक लघु–दीर्घ रचनाओं के साथ प्रस्तुत कृति पृष्ठ संख्या 149 पर लिखी हुई है। प्रति के हर पृष्ठ पर प्रायः सत्ताइस पंक्ति और हर पंक्ति में लगभग बीस अक्षर है। अक्षर सुंदर व स्पष्ट है।

लक्ष्मीवल्लभोपाध्यायजी रचित
जिनप्रतिमा के विषय में सम्यग्दृष्टी को शिक्षा सज्झाय

चरण नमुं श्री वीर ना रे, धरि मनि भाव अभंग
पामीजै जसु सेवथी, ज्ञान दरसण रे चारित गुणचंग । 1।
कि सुणज्यो रे सुविचारी,
तुम्हे तजिज्यो रे मनहुंती संक
कि थाइज्यो समकितधारी।।आंकडी।।
जिनप्रतिमा जिनसारिखी रे, भाषी श्रीजिनराज
समकितधर मनि सरदहे, भवजल निधि रे तरिवानै जिहाज
कि सुणज्यो रे सुविचारी,।।2।।
जेहनौ नाम जपी जीयै रे, धरीयै जेहनी आण
मूरति तास उथापता, सहु करणी रे थाये अप्रमाण
कि सुणज्यो रे सुविचारी,।।3।।
वंदे पूजै भावसुं रे, समकिती अरिहंत देव
तिम अरिहंतना बिंबनी, मनसुधइ रे सारे नितसेव
कि सुणज्यो रे सुविचारी,।।4।।

नाम ठवण द्रव्य भावसुं रे, श्री अनुयोग दुवार
च्यारि निषेपा जिनतणा, वंदे पूजे रे ध्यावे समकितधार
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।5।।
भावपूजा कही साधुनै रे, श्रावक ने द्रव्य भाव
धरम सकल जिनसेव में, सिवसुख नो रे एहिज उपाय
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।6।।
दान सील तप दोहिला रे, अहनिसि ए नवि थाइ
भावे जिनबिंब वंदता, भवभवना रे सहु पातक जाय
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।7।।
नाम जपंता जिन तणो रे, रसना जौ निरमल थाय
तौ जिनबिंब जुहारता, निहचै सुं रे हुइ निरमल काय
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।8।।
साधु अने श्रावक तणा रे, कह्या धर्म दोइ प्रकार
श्री जिनवर ने गणधरे, सर्वविरती रे देसविरति विचार
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।9।।
श्रावक ने थावर तणी रे, न पले दया लिगार
सवा विश्वा पाले सही, जो होवे रे बारह व्रतधार
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।10।।
वीस विश्वा पाले जती रे, रहतो निज आचार
सरसव मेरु नो अंतरो, गृहधरम रे मुनि धरमइ संभार
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।11।।
तिण कारण श्रावकभणी रे, समकित प्रापति काज
पूजा श्रीजिनबिंब नी, मुनि सेवा रे बोली जिनराज
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।12।।
पर्व दिवस पोसो कह्यो रे, आवश्यक दोइ वार
अवसर सामाइक करे, भोजन करे रे जिन मुनिनइ जुहार
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।13।।
घर करसण व्यापार में रे, भाख्यो छे आरंभ
पूजा जिहां जिनबिंबनी, तिहां भाषी रे जिनभगति अदंभ
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।14।।
पुत्र कलत्र परिवारमइ रे, शुद्ध न ह्वे तप सील
दान थकी पूजा थकी, श्रावक ने रे थाये सुख लील
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।15।।
जिनवर वचन उथापिनइ रे, निज मन कलपना मेलि
जिनमूरति पूजा तजे, ते जाणो रे मिथ्यात नी केलि
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।16।।
जिन मुनि सेवा कारणे रे, आरंभ जे इहां थाइ
अप्प करम बहु निज्जरा, भगवति सूत्रे रे भाषे जिनराइ
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।17।।
सूत्र वचन जे ओलवे रे, जे आणे संदेह
मिथ्यामत ना उदयथी, भारीकरमा रे जाणो नर तेह
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।18।।
जिनमूरति नंदीजीये रे, तिण नंद्या जिनराय
पूजा ना अंतरायथी, जीव बंधइ रे दसविधि अंतराय
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।19।।
अंग उपंग सिद्धांत में रे, श्रावकनइ अधिकार
न्हाया कयवलि कम्मिया, पूजाना रे ए अरथ विचार
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।20।।
जीवाभिगम उवाईये रे, ज्ञाता भगवती अंग
रायपसेणी में वली, जिनपूजा रे भाखी सतरह भंग
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।21।।
श्री भगवंतइ भाषीया रे, पूजा ना फल सार
हित सुख मोक्ष कारण सही, ए अक्षर रे मन में अवधार
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।22।।
चित्रलिखित नारी तणो रे, रूप देख्यां कामराग
तिम वैराग नी वासना, मनि उपजे रे देख्यां वीराग
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।23।।
श्रीशिज्जंभव गणधरू रे, तिम वलि आद्रकुमार
प्रतिबूधा प्रतिमा थकी, तिणे पाम्यो रे भवसागर पार
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।24।।
दानव मानव देवता रे, जे धरे समकित धर्म
ते उत्तम करणी करे, ते न करे रे कोई कुच्छित कर्म
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।25।।
सर्वलोक मांहे अबे रे, जिनवर चैत्य जिकेवि
ते पंचम आवश्यके, आराधे रे मुनि श्रावक बेवि
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।26।।
सार सकल जिनधर्मनो रे, जिनवर भाष्यो एह
लक्षमीवल्लभ गणि कहे, जिनवचने रे मति धरो संदेह
कि सुणज्यो रे सुविचारी, ।।27।।

।। इति श्री जिनप्रतिमा विषये सम्यग्दृष्टीनां शिक्षा सज्झाय संपूर्णम् ।।

–जिनहरि विहार धर्मशाला
तलेटी रोड़, पालीताना–364270 गुजरात